रचना एक विश्वकर्मा की, चारों ओर चमकती है ।
इस में विद्या भाँति भाँति की, भद्राधार दमकती है ॥
शिल्प, कलाकारी, ज्योतिष के, उमग रहे सब अङ्ग ।
उठते हैं शिक्षा—सागर में, विविध--प्रसङ्ग—तरङ्ग ॥३८॥

जितने पुण्य-श्लोक-प्रतापी, जीवन्–मुक्त कहाते हैं ।
वे बुध–बुद्ध महाविद्या के, शुद्ध--प्रवाह बहाते हैं ॥
ऐसे गुरुओं से पढ़ते हैं, सब निर्धन, धनवान ।
किस को शिक्षा देसकते हैं, गुरु-कुल पण्य समान ॥३९॥

जो कवि कहै इन्हीं बातों को, तो जीवन चुक जावेगा ।
पर प्यारे के उपदेशों का, अन्तिम-अंक न आवेगा ॥
सर्व--शिरोधर वेदों के ये, आशय–अटल–अनूप ।
जानो भावभरीकाविता को, निपट निदर्शन–रूप ॥४०॥

जो जन इन प्यारे पद्यों के, अर्थ यथा-विधि जानेंगे ।
वे इस नैसर्गिक-शिक्षा को, सत्य–सनातन मानेंगे ॥
जिन को भाव नहीं भावेंगे, परम—प्रमाणित–गूढ़ ।
वे समझेंगे शंकर को भी, कुकवि मनोमुख-मूढ़ ॥४१॥

अपौरुषेय-पद्धति-प्रतीक ५०

(दोहा)

हे शंकर स्वामी तुही, मङ्गल-मूल-महेश ।
पाया जीव-समूह ने, गुरु तेरा उपदेश ॥१॥

नोट—यदि नीरोगता-पूर्वक मेरा जीवन शेष रहा तो "नैसर्गिकशिक्षा" नामक एक स्वतंत्र ग्रन्थ रच कर पाठक महाशयों की सेवा में भेंट किया जायगा। सिद्ध-मनोरथ होना परमात्मा के अधीन है। (शंकर)

पावस-पञ्चाशिका ५१

(रोलाछन्द)

शंकर देख ! विचित्र, सृष्टि-रचना शंकर की ।
बोल ! किसे कब थाह, मिली संसृति-सागर की ॥
जड़, चेतन, के खेल, मनोहर—दृश्य खरे हैं ।
इन में मङ्गल—मूल, निरे उपदेश भरे हैं ॥ १ ॥

इस प्रसंग के अङ्ग, अखिल-विद्या के घर हैं ।
अर्थ-अमोघ-विशुद्ध, शब्द-अद्भुत-अक्षर हैं ॥
इस का अनुसन्धान, यथा-सम्भव जब होगा ।
अनुभवात्मक—ज्ञान, अन्यथा तब कब होगा ? ॥२॥

स्वाभाविक-गुण-शील, अन्य सब जीव निहारे ।
पर मनुष्य को मंत्र, मिले जड़, चेतन, सारे ॥
ब्रह्म-शक्ति जिस भाँति, यथा-विधि सिखा रही है ।
पावस के मिस दिव्य, निदर्शन दिखा रही है ॥ ३ ॥

ऊपर को जल सूख, सूख कर उड़जाता है ।
सरदी से सकुचाय, जलद—पदवी पाता है ॥
पिघलावे रवि-ताप, धरा-तल पै गिरता है ।
बार बार इस भाँति, सदा हिरता फिरता है ॥ ४ ॥

पाय पवन का योग, घने घन घुमड़ाते हैं ।
कर किरणों से मेल, विविध—रङ्गत पाते हैं ॥
समझो, जिस के पास, प्रकाश न जा सकता है ।
क्या वह भौतिक-भाव, रङ्ग दिखला सकता है ॥ ५ ॥

चपला-चञ्चल-चाल, दमकती, दुर जाती है ।
बज्र-घात घन-घोर, गगन में पुर जाती है ॥
दोनों चल कर साथ, विषम-गति से आते हैं ।
प्रथम उजाला देख, शब्द फिर सुन पाते हैं ॥ ६ ॥

जब दिनेश की ओर, झोर-झरने झड़ते हैं ।
इन्द्र-चाप तब अन्य, घने-घन पै पड़ते हैं ॥
नील, अरुण के साथ, पीत छवि दिखलाते हैं ।
हम को मिश्रित-रंग, बनाना सिखलाते हैं ॥ ७ ॥

जब चादर सा अभ्र, गगन में तन जाता है ।
दिव्य-परिधि का केन्द्र, इन्दु तब बनजाता है ॥
शशि का कुण्डल-गोल, समझ में आया जब से ।
बुध मण्डल ने वृत्त,-विधान बनाया तब से ॥ ८ ॥

भूधर से सब श्याम, धवल-धाराधर धाये ।
घूम घूम चहुँ ओर, घिरे गरजें झर लाये ॥
वारि-प्रवाह अनेक, चले अचला पर दीखे ।
इस विधि कुल्या, कूल, बहाना हम सब सीखे ॥ ९ ॥

झावर, झील, तड़ाग, नदी, नद, सागर, सारे ।
हिल-मिल एकाकार, हुए पर हैं सब न्यारे ॥
सब के बीच बिराज, रहा पावस का जल है ।
व्यापक इस की भांति, विश्व में ब्रह्म-अचल है ॥१०॥

निरख नदी की बाढ़, वृष्टि पिछली पहचानी ।
समझे मेघ निहार, अवस बरसेगा पानी ॥

प्रकट भूमि की चाल, करे अस्तोदय रविका ।
यों अनुमान–प्रमाण, मिला पावसकी छविका ॥११॥

अँधियारी निशि पाय, बिचरते हैं चरते हैं ।
दोनों परघर तोड़, फोड़ ऊजड़ करते हैं ॥
इन का सिद्ध-प्रसिद्ध, चरित-साधर्म्य घना है ।
अटके चोर, उलूक, उड़ें उपमान बना है ॥१२॥

मल, गोबर के ग्रास, पाय गप गप खाते हैं ।
गढ़ गढ़ गोले गोल, लुड़कते लुड़काते हैं ॥
गुबरीले इस भांति, क्रिया-विधि जो न जनाते ।
तो वटिका कविराज, कहो किस भांति बनाते ॥१३॥

उलहे पादप–पुञ्ज, पाय सुख-रस चौमासा ।
केवल आक अचेत, पड़े जल गया जवासा ॥
समझे, जो प्रतिकूल, सलिल, मारुत पाता है ।
रहता है वह रुग्ण, त्याग तन मरजाता है ॥१४॥

अधिक अंधेरी रात, झमक+झिंगुर झिंगारें ।
तिलका, तान उड़ाय, रहे निशिअलि गुंजारें ॥
यदि ये गाल फुलाय, राग अविराम न गाते ।
तो बरुआ स्वर साध, बेणु, बंसुरी न बजाते ॥१५॥

जल में जोंक, भुजङ्ग, भूमि तल पै लहराते ।
फुदके मेंढक, काक, कुदकती चाल दिखाते ॥

+ झिंगुर = झिल्ली – मंजीरा १ – तिलका = चित्तीदार कीट – चचैया । निशिअलि = बड़ा गुबरीला जो रात को गुंजारता हुआ उड़ता है

मन्द–मन्द–गति हंस, कबूतर की जब जानी ।
तब तो धमनी बात, पित्त, कफ़ की पहंचानी ॥१६॥

दिन में विचरें साथ, रहें रजनी भर न्यारे ।
सरिता की इस पार, और उस पार पुकारे ॥
यों चकई, चक, जोड़, सुधा, विष, बरसाते हैं ।
मिलने का सुख, दुःख, बिरह का दरसाते हैं ॥१७॥

चपला के चर–दूत, कि रजनी-पति के चेरे ।
चम चम चारों ओर, चमकते हैं बहुतेरे ॥
जो तम का उर फाड़, तेज खद्योत न भरते ।
तो हम दिये जलाय, अंधेरा दूर न करते ॥१८॥

पिस्सुक, मच्छर, डांस, कूतरी, खटमल, काटें ।
दिन में रहें अचेत, रात भर खाल उपाटें ॥
यों अविवेक—प्रधान, महातम की बनिआई ।
काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, अटके दुखदाई ॥१९॥

दीपक पै कर प्यार, पतङ्ग प्रताप दिखाते ।
त्याग त्याग तन प्राण, प्रीति-रस-रीति सिखाते ॥
जाना अविचल–प्रेम, निठुर से जो करते हैं ।
वे उस प्रिय के रूप, अग्नि में जल मरते हैं ॥२०॥

पिछली रात सचेत, आंख उठ कुक्कुट खोलें ।
अब सब सोते जाग, पड़ें इस कारण बोलें ॥
सुनते ही शुभ–नाद, दिवाचर नींद बिसारें ।
वक्ता स्वर अनुदात्त, उदात्त, स्वरित उच्चारें ॥२१॥

दिन में बिकसें कंज, पाय रजनी सकुचाते।
निशि में खिलें कुमोद, दिवस में कोश दुराते ॥
ये रवि,शशि के भक्त, यथा क्रम सकुचें फूलें।
यों सामयिक–सुकर्म, करें हम लोग न भूलें ॥२२॥

प्राण-पवन को रोक, भेक जीवित रहते थे।
बिवरों में चुप चाप, घोर आतप सहते थे ॥
अब तो पाय अगाध,–सलिल मंगल गाते हैं।
इन से सीख समाधि, सिद्ध मुनि सुख पाते हैं ॥२३॥

बगले ध्यान लगाय, मौन-मुनि बन जाते हैं।
मन मैले तन-श्वेत, पकड़ मछली खाते हैं ॥
साधु–वेष–बटमार,–मूढ़ इस भांति बने हैं।
ठग पाखण्ड प्रमाद, भरे बक–वृत्ति घने हैं ॥२४॥

कारण्डव कलहंस, करें जल–केलि न हारें।
पनडुब्बी चहुं ओर, फिरें फिर डुबकी मारें ॥
जो हम इन के काम, सीख अभ्यास न करते।
कूद कूद कर तो न, ताल नदियों में तरते ॥२५॥

किचुआ-अन्ध-अनेक,–अधोमुख गाढ़ रहे हैं।
निगल रहे जो कीच, वही मल काढ़ रहे हैं ॥
स्वाभाविक निज धर्म, जगत को जता रहे हैं।
बस्ति–कर्म इस भांति, बिलक्षण बता रहे हैं ॥२६॥

इन्द्रबधू—कल–कीट, अरुण पाये मन भाये।
समझे विधि ने लाल, प्रबाल सजीव बनाये ॥

इन का कुनबा रंग, रहा उपजा जंगल में।
हम ने भी यह रंग, ढङ्ग ढाला मखमल में ॥२७॥

विविध अनूठे-रूप, रङ्ग धारण करती हैं।
सांग अनेक प्रकार, तितिलियां क्योंभरतीहैं ॥
जो इन के अनुसार, ठीक अभ्यास न करते।
तो नट नाटक में न, वेष मन माने धरते ॥ २८ ॥

अब गिजाइयां देख, पौध इन की बढ़ती है।
पकड़ एक को एक, बना वाहन चढ़ती है ॥
आरोहण इस भांति, कई ढब का जब दीखा।
तब तो चढ़ना अश्व, आदि पर हम ने सीखा ॥ २९ ॥

उगलें तार पसार, बुनाई से लग पड़ना।
जटिल फन्द में फांस, फांस आखेट पकड़ना ॥
मकड़ी ने अन-मोल, अनेक सुदृश्य दिखाये।
तन्तु, वस्त्र, गुण, जाल, बनाने सविधि सिखाये ॥३०॥

पहले से सुप्रबन्ध, यथोचित कर लेते हैं।
कर उद्योग अनाज, विवर में भर लेते हैं ॥
वर्षाभर वह अन्न, चतुर चिंउंटे खाते हैं।
धन सञ्चय का लाभ, भोग-सुख समझाते हैं ॥३१॥

सारस भोग-बिलास, सदा सुख से करते हैं।
इन की भांति अनेक, नभग जोड़ चरते हैं ॥
धन्य पवित्र-चरित्र, अनामय-द्विज जीते हैं।
जान, मान गृह-धर्म, प्रेम-रस हम पीते हैं ॥३२॥

नाचें मगन मयूर, मोरनी मन हरती हैं।
पी पी पिय-चख-नीर, गर्भ धारण करती हैं॥
जो न थिरकते रास, रंग रच रसिया केकी।
तो न मटकते भांड़, षण्ढ, कत्थक, अविवेकी ॥३३॥

स्वांति-सलिल की चाह, चहकते चातक डोलें।
अन्योदक—अवलोक, तृषातुर चोंच न खोलें॥
अटल—टेक से सिद्ध,—मनोरथ कर लेते हैं।
प्रण—पालन की धीर, सुमति-सम्मति देते हैं ॥३४॥

अपनी सन्तति काक,—कृपण से पलवाती है।
पेड़ पेड़ पर बैठ, मुदित मञ्जुल गाती है॥
कोयल की करतूति, चतुर अबला गहती है।
तनुज धाय को सौंप, आप युवती रहती है॥ ३५॥

कब देखा सहवास, प्रकट कौओंका कहिये।
वायस—व्रत की वीर, बड़ाई करते रहिये॥
जो इन के प्रतिकूल, चाल चलते नर नारी।
तो पशु—दल की भांति, न रहती लाज हमारी॥ ३६॥

जिन के भीतर धूप, न जाय न शीत सतावे।
बरसे मूसल—धार, मेह पर बूँद न आवे॥
गेह रचें सुख—धाम, चतुर चटकों के जाये।
हम के इन का काम, देख तृण—मण्डप छाये॥ ३७॥

मौन अधोमुख भीग, रहे बानर मन मारें।
पंख निचोड़ निचोड़, द्रुमों पर मोर पुकारें॥

समझे जितने जीव, न सदन बनाते होंगे ।
वे सब इन की भांति, अबस दुख पाते होंगे ॥ ३८ ॥

आपस में सब श्वान, अकड़ ते हैं लड़ते हैं ।
कुतियों को कर तङ्ग, उलझ ने को अड़ते हैं ॥
खाय मदन की मार, पुकारें विकल-कुयोगी ।
बिन विवाह सम्बन्ध, न किस की दुर्गति होगी ॥ ३९ ॥

सब को ऊसर, डांग, शैल, बन बांट दिये हैं ।
उपजाऊ चक-बार, धरातल छांट दिये हैं ॥
विधि ने मंगल-मूल, यथोचित न्याय किया है ।
कृषि द्वारा हम लोग, जियें उपदेश दिया है ॥ ४० ॥

काढ़ कांप-विकराल, सबल-शूकर आते हैं ।
खोद खोद कर खेत, गांठ-गुड़हर खाते हैं ॥
जो इन के दृढ़-तुण्ड, न भूतल झुण्ड उड़ाते ।
तो कुल-वीर किसान, कभी हल जोत न पाते ॥ ४१ ॥

फूल, फले, बन, बाग़, सरस-हरियाली छाई ।
वसुधा ने भरपूर, सस्य-मय सम्पति पाई ॥
उद्यम की जड़ मुख्य, जगत-जीवन खेती है ।
एक बीज उपजाय, बहुत से कर देती है ॥ ४२ ॥

बेलि, लता, तरु, गुल्म, पसारें छदन छबीले ।
पल्लव लटकें फूल, फली, फल, धार फबीले ॥
जो हम को करतार, न सुन्दर दृश्य दिखाता ।
तो कृत्रिम-फुलवाड़, विरचना कौन सिखाता ॥ ४३ ॥

उपजे छत्रक-पुञ्ज, सुकोमल श्वेत सुहाये ।
इन्द्र-फलक-पद पाय, कुकुरमुत्ता कहला ये ॥
यदि इन के आकार, गुणी-जन देख न पाते ।
तो फिर छतरी, छत्र, कहो किस भांति बनाते ॥ ४४ ॥

मूल, दण्ड, दल, गोंद, फूल, फल, सार, रसीले ।
बीज, तेल, तृण, तूल, गन्ध, रँग, काठकसीले ॥
कर ते हैं दिन, रात, दान प्रिय-पादप सारे ।
सीखे परउपकार, इन्हीं से सुहृद् हमारे ॥ ४५ ॥

जिन की घोर पुकार, सदा सब सुन पाते हैं ।
वे बिन जीव, सजीव, सकल समझे जाते हैं ॥
यदि स्वाभाविक-शब्द, अर्थ अपने न बताते ।
कल्पित भाषण तो न, मनोगत भाव जताते ॥ ४६ ॥

फूल गये अब कांस, जरा पावस पर छाई ।
जलदों ने जय पाय, कूच की गरज सुनाई ॥
केश पकाय असंख्य,-वृद्ध-जन मर जाते हैं ।
बिरले घन की भांति, सर्व-हित कर जाते हैं ॥ ४७ ॥

अब लों जितना भाव, जांच कर जान लिया है ।
क्या अनुभव का अन्त, वही बस मान लिया है ॥
नहीं नहीं जिस भांति, सुमति की उन्नति होगी ।
तदनुसार उद्योग, करेंगे गुरु—जन योगी ॥ ४८ ॥

अमित ज्ञान की कौन, इतिश्री कर सकता है ।
सागर, गागर में न, कभी भी भर सकता है ॥

जिन को तत्व-प्रकाश, मिला है शिव-सविता से ।
उन का अनुसन्धान, बढ़ेगा इस कविता से ॥ ४९ ॥

वैदिक-मंत्र-समूह, अमिति–विद्या का घर है ।
पावस का उपदेश, बानगी सा लघु–तर है ॥
कवि का जीवन-काल, अभी यदि शेष रहैगा ।
तो पद पाठ-प्रसङ्ग, कभी कुछ और कहैगा ॥ ५० ॥

सबल ब्रह्म ५२

(दोहा)

ब्रह्म सच्चिदानन्द का, देखा सबल स्वरूप ।
शंकर तू भी होगया, परम रङ्क से भूप ॥ १ ॥

सगुण ब्रह्म ५३

(षट्पदीछन्द)

प्रकटे शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, धार तू ।
सर्व, सर्वसंघात, ख, मारुत, अग्नि, आप, भू ॥
शुद्ध-सच्चिदानन्द, विश्व-व्यापक, बहुरंगी ।
मन, दिगात्मा, काल, सत्त्व, रज, तम, का संगी ॥
हे अद्वितीय! तू एक ही, अविचल, चले अनेक में ।
यों पाया शंकर को तुही, शंकर बिमल-विवेक में ॥१॥

पुरुष और प्रकृति का मेल ५४

(सोरठा)

समझा चेतन और, जान लिया जड़ और है ।
युगल एक ही ठौर, दरसें भिन्न, अभिन्न से ॥१॥

प्रपंच-पंचक ५५

(दोहा)

माया मायिक-ब्रह्म की, उमगी गुण-विस्तार।
ठोस, पोल के मेल में, बिचरे खेल पसार ॥१॥
देश, काल की कल्पना, ज्ञान,क्रिया-बल पाय।
जागी जगदम्बा-अजा, नाम, रूप, अपनाय ॥२॥
इन्द्र, इन्द्रियों, से हुआ, तन का मन का मेल।
भूत बने दो भांति के, हिल मिल खेलें खेल ॥३॥
साधन पाया जीव ने, मन द्रुत-गामी दूत।
सारहीन-संसार है, उस का ही अनुभूत ॥४॥
भर जाते हैं स्वप्न में, जाग्रत के सब ढंग।
पाय गाढ़-निद्रा रहै, चेतन एक-असंग ॥५॥

स्वाभाविक योग ५६

(दोहा)

तू सब का स्वामी बना, सेवक हैं हम लोग।
नाथ! न छूटेगा कभी, यह स्वाभाविक-योग ॥१॥

हिरण्यगर्भ ५७

(भजन)

सुख दाता तू प्रभु मेरा है ॥टेक॥
तेरी परम-शुद्ध-सत्ता में, सब का विशद-बसेरा है।
सुख दाता तू प्रभु मेरा है॥

केवल तेरे एक-देश ने, घटक प्रकृति का घेरा है ॥
सुख दाता तू प्रभु मेरा है ॥
तू सर्वस्व-सकल-जीवों का, किस पर प्यार न तेरा है।
सुख दाता तू प्रभु मेरा है ॥
दीन-बन्धु तेरी प्रभुता का, जड़-मति-शंकर चेरा है ॥
सुख दाता तू प्रभु मेरा है ॥१॥

शिव-सत्तात्मक-विश्व विकाश ५८

(दोहा)

तेरी शुभ सत्ता बिना, हे प्रभु-मंगल-मूल।
पत्ता भी हिलता नहीं, खिलता कहीं न फूल ॥ १ ॥

सत्य-विश्वास ५९

(भजन)

जिस में तेरा नहीं विकास,
वैसा विकसा फूल नहीं है ॥टेक॥
मैंने देख लिया सब ठौर, तुझ सा मिला न कोई और,
पाया तू सब का सिर मौर, प्यारे इस में भूल नहीं है।
जि० ते० न० वि० वै० फूल नहीं है ॥
तेरे किंकर करुणा-कन्द, पाते हैं अविरल-आनन्द,
तुझ से भिन्न सच्चिदानन्द, कोई मंगल-मूल नहीं है ॥
जि० ते० न० वि० वै० फूल नहीं है ॥
प्रेमी-भक्त प्रसाद विसार, मांगें मुक्ति पुकार पुकार,
सब का होगा सर्व-सुधार, जो पै तू प्रतिकूल नहीं है।
जि० ते० न० वि० वै० वि० फूल नहीं है ॥

जिन को मिला बोध विश्राम, जीवन्-मुक्त बने निष्काम,
उन को हे शंकर श्री-धाम, तेरा न्याय-त्रिशूल नहीं है ॥
जि० ते० न० बि० वै० फूल नहीं है ॥ १ ॥

व्यापक-व्याप्य-स्वामि-सेवक ६०

(दोहा)

प्यारे तू सब में बसे, तुझ में सब का बास ।
ईश हमारा है तुही, हम सब तेरे दास ॥ १ ॥

विनय ६१

(शुद्धगात्मक-राजगीत)

विधाता तू हमारा है, तुही विज्ञान दाता है ।
बिना तेरी दया कोई, नहीं आनन्द पाता है ॥
तितिक्षा की कसोटी से, जिसे तू जाँच लेता है ।
उसी विद्याधिकारी को, अविद्या से छुड़ाता है ॥
सताता जो न औरों को, न धोखा आप खाता है ।
वही सद्भक्त है तेरा, सदाचारी कहाता है ॥
सदा जो न्याय का प्यारी, प्रजा को दान देता है ।
महाराजा ! उसी को तू, बड़ा-राजा बनाता है ॥
तजे जो धर्म को, धारा,-कुकर्मों की बहाता है ।
न ऐसे नीच-पापी को, कभी ऊंचा चढ़ाता है ॥
स्वयंभू-शंकरानन्दी, तुझे जो जान लेता है ।
वही कैवल्य-सत्ता की, महत्ता में समाता है ॥ १ ॥

अविद्यासे हानि ६२

(दोहा)

जो मुझ से न्यारा नहीं, नित्य निरन्तर साथ ।
हा? वह विद्या के बिना, अबलों लगा न हाथ ॥ १ ॥

जिज्ञासु की जिज्ञासा ६३

(गीत)

प्रभु रहता है पास,
हा? पर हाथ न आवे ॥ टेक ॥

प्राणों से भी अति प्यारा, होता है कभी न न्यारा,
मुझ में करे निवास, भीतर बाहर पावे ।
प्र० र० पा० हा० हा० न आवे ॥

स्वामी स्वाभाविक-सङ्गी, अङ्गों में टिका अनङ्गी,
आस्थिर—भोग—विलास, रोचक—रचे रिझावे ।
प्र० र० पा० हा० हा० न आवे ॥

जो दोष देख लेता है, तो उग्र—दण्ड देता है,
उपजावे भय—त्रास, नांस सांस तरसावे ।
प्र० र० पा० हा० हा० न आवे ॥

मेरे उद्योग न रोके, कर्मों को सदा बिलोके,
मन में करे विकास, शंकर खेल खिलावैं ॥
प्र० र० पा० हा० हा० न आवे ॥ १ ॥

युगल-विलास ६४

(षट्पदी-छन्द)

मन के हर्ष, विषाद, करें मोटा, कृश तन को।
तन के रोग, विकाश, दुःखसुख देते मन को॥
ज्ञान, क्रिया उपजाय, फुरें चेतनता, जड़ता।
इन का अन्तर भेद, निराला सूक्ष्म न पड़ता॥
अद्वैत सर्व-संघात के, पुरुष प्रकृति दो नाम हैं।
कूटस्थ शंकरानन्द में, सब मायिक परिणाम हैं॥

मतवादी ब्रह्म को नहीं पाते ६५

(दोहा)

मत वालों को ब्रह्म का, मिलना है दुशवार।
क्या समझावेंगे उन्हें, शंकर के अशआर॥ १॥

जलालेएज़दी ६६

(ग़ज़ल)

हर शाख़ से अयां है, हर सू जलाल तेरा।
माशूक़े बुलबुलां है, ऐ गुल जमाल तेरा॥
नाज़िर न देखता है, इन्साफ़ की नज़र से।
मन्ज़र दिखा रहे हैं, कामिल कमाल तेरा॥
वाइज़ बजा रहा है, तसलीस की सितारी।
माहिरे मुसल्लमा है, दिल बे मिसाल तेरा॥
मख़्लूक़ मानता है, मख़्लूक़ ही ख़ुदा को।

मुश्ताक़ मारिफ़त है, ख़ालिस ख़याल तेरा ॥
अल्लाह को अलहदा, साबित करें जहां से ।
दल्लाल हल न होगा, क्या! यह सुआल तेरा ॥
बे ख़ौफ़ कर रहा है, गुमराह जाहिलों को ।
* शैतान इस बदी से, जल जाय जाल तेरा ॥
ग़ारत नहीं करेगा, उस को जहाने-फ़ानी ।
शंकर नसीब होगा, जिस को विसाल तेरा ॥१॥

प्रेमोपदेश ६७

(दोहा)

खोल खिलौने खोखले, खेल पसार न खेल ।
प्रेमामृत पीले सखा, शंकर से कर मेल ॥१॥

सच्ची-सूचना ६८

(सुन्दरात्मक-राजगीत)

वह पास ही खड़ा है, पर दूर मानता है ।
किस भूल में पड़ा है, कुछ भी न जानता है ॥
हठ-वाद से हठीले, हरि का न मेल होगा ।
छल की कहानियों को, बस क्यों बखानता है ॥
सुनते कुराग तेरे, अब कान वे नहीं हैं ।
फिर तान बेतुकी को, किस हेतु तानता है ॥

* शैतान = मार - यह वह मनोविकार है जो सचाई से हटा कर मिथ्या की ओर खींचता है, महात्मा-बुद्ध-देव इसी को जीत कर "मारजित्" बने थे -

जगदीश को भुलाया, जड़ का बना पुजारी।
समझा पिसान पाया, पर धूलि छानता है ॥
लड़ती, लड़ा रही है, अविवेकता-मतों की।
पशुता प्रमाद ही से, उस की समानता है ॥
छलिया छुपा रहा है, अपनी अजानकारी।
इस दम्भ की प्रथा में, भ्रम की प्रधानता है ॥
जिस वेद का सदा से, उपदेश हो रहा है।
उस के विचारने का, प्रण क्यों न ठानता है ॥
कवि शंकरादि ने भी, जिस का न अन्त पाया।
उस ब्रह्म से निराली, कुछ भी न मानता है ॥१॥

प्रकृति, परमात्मा, जीवात्मा, ६९

(दोहा)

एक महत्ता में मिला, तुझ को मुझ को बास।
मेरी भांति करे नहीं, पर तू भोग-विलास ॥१॥

उपासना-पञ्चक ७०

(भुजङ्गप्रयातात्मक-मिलिन्दपाद)

अजन्मा न आरम्भ तेरा हुआ है। किसी से नहीं जन्म मेरा हुआ है ॥
रहेगा सदा अन्त तेरा न होगा। किसी काल में नाश मेरा न होगा ॥
खिलाड़ी खुला खेल तेरा रहेगा।
मिटेगा नहीं मेल मेरा रहेगा ॥ १ ॥
अजा को अकेली न तू छोड़ता है। मुझे भी जगज्जाल से जोड़ता है ॥
न तू भोग भोगे बना-विश्व-योगी। किया कर्म-योगी मुझे भोग भोगी ॥

निराला न तेरा बसेरा रहैगा ।
मिटेगा नहीं मेल मेरा रहैगा ॥ ३ ॥

निराकार! आकार तेरा नहीं है । किसी भांति का मान मेरा नहीं है ॥
सखा! सर्व-संघात से तू बड़ा है । मुझे तुच्छता में समाना पड़ा है ॥
उजाला रहैगा अंधेरा रहैगा ।
मिटेगा नहीं मेल मेरा रहैगा ॥ ३ ॥

अनेकत्व होगा न एकत्व तेरा । न एकत्व होगा अनेकत्व मेरा ॥
न त्यागे तुझे शक्ति-सर्वज्ञता की । लगी है मुझे व्याधि-अल्पज्ञता की ॥
दुई का घटा टोप घेरा रहैगा ।
मिटेगा नहीं मेल मेरा रहैगा ॥ ४ ॥

तुझे बन्ध-बाधा सताती नहीं है । मुझे सर्वदा—मुक्ति पाती नहीं है ॥
प्रभो! शंकरानन्द आनन्द दाता । मुझे क्यों नहीं आपदा से छुड़ाता ॥
दया-दान का दीन चेरा रहैगा
मिटेगा नहीं मेल मेरा रहैगा ॥ ५ ॥

नैसर्गिक—नीराजन ७१

(दोहा)

भानु, चन्द्र, तारे, शिखी, चपला, उल्का, पात । *
शंकर तेरी आरती, करते हैं दिन रात ॥ १ ॥

आरती ७२

(मानसमरालछन्द)

जय शंकर स्वामी,
जय श्रीशंकर स्वामी ।
अविचल, अन्तर्यामी, एक अपरिणामी ॥

* पात = शुभ ज्योति — पैरोराबोर प्रकाश, चमकदार ।

जय शंकर स्वामी ॥

मङ्गल-मूल महत्ता, अतुलित श्री-मत्ता ।
सत्य-सनातन-सत्ता, अजरामर—अत्ता ॥
जय शंकर स्वामी ॥

व्यापक, विश्व-विहारी, अव्यय, अविकारी ।
मुक्त, महाबल धारी, जन-संकट-हारी ॥
जय शंकर स्वामी ॥

लोचन हीन निहारे, मुख बिन उच्चारे ।
बिन मस्तिष्क विचारे, निर्गुण गुण धारे ॥
जय शंकर स्वामी ॥

रच रच न्यारे न्यारे, भुवन-भानु धारे ।
तैजस-पिण्ड पसारे, चमकें शशि, तारे ॥
जय शंकर स्वामी ॥

जल की तांत उड़ावे, बादल बरसावे ।
अन्नादिक उपजावे, जगदुन्नति पावे ॥
जय शंकर स्वामी ॥

प्रकृति जीव को जोड़े, फिर उलटे मोड़े ।
आप मिलाप न छोड़े, नेक न त्रिक तोड़े ॥
जय शंकर स्वामी ॥

अखिलाधार-विधाता, सुख जीवन दाता ।
मित्र, बन्धु, गुरु, त्राता, परम-पिता, माता ॥
जय शंकर स्वामी ॥

विषय-भोग अभोगी, सब के उपयोगी ।
कर्म-विपाक वियोगी, अनघ, अनुद्योगी ॥
जय शंकर स्वामी ॥

कपट-जाल से छूटें, छल के गढ़ टूटें।
लंगठ, लबार न लूटें, भ्रम के मठ फूटें ॥
जय शंकर स्वामी ॥
ललना जन्म न खोवें, कुल-विदुषी होवें।
हा ? कुलटा न बिगोवें, रांड न दुख रोवें ॥
जय शंकर स्वामी ॥
बालक ऊत न ऊलें, वीर न बल भूलें।
बंश-कल्प-तरु-फूलें, जीवन-फल झूलें ॥
जय शंकर स्वामी ॥ ? ॥
सुख-भोगें हम सारे, सब सब के प्यारे।
जियें प्रजेश हमारे, कुल-पालन हारे ॥
जय शंकर स्वामी ॥
बैर, बिरोध बिसारें, वैदिक—ब्रत धारें।
धर्म सुकर्म प्रचारें, पर-हित बिस्तारें।
जय शंकर स्वामी ॥
सामाजिक-बल पावें, यश को अपनावें।
सभ्य, सुबोध कहावें, प्रभु के गुण गावें ॥
जय शंकर स्वामी ॥

दृढ़प्रतिज्ञ-७३

(दोहा)

मार सहै अन्धेर की, अटकैं कष्ट अनेक।
धर्म-वीर की अन्तलों, पर न टलेगी टेक ॥ १ ॥

धर्मजिज्ञासा ७४

(गीत)

हे जगदीश देव! मन मेरा,
सत्य सनातन–धर्म न छोड़े ॥ टेक ॥

सुख में तुझ को भूल न जावे, नेक न संकट में घबरावे,
धीर कहाय अधीर न होवे, तमक न तार क्षमा का तोड़े।
हे ज० दे० म० स० स० ध० नछोड़े ॥

त्याग जीव के जीवन–पथ को, टेढ़ा हांक न दे तन-रथ को,
अति चञ्चल इन्द्रिय घोड़ों की, भ्रम से उलटी बाग न मोड़े ॥
हे ज० दे० म० स० स० ध० न छोड़े ॥

होकर शुद्ध महा–व्रत धारे, मलिन किसीका माल न मारे,
धार-घमण्ड क्रोध-पाहन से, हा? न प्रेम–रस का घट फोड़े।
हे ज० दे० म० स० स० ध० न छोड़े ॥

ऊँचे बिमल-विचार चढ़ावे, तप से प्रातिभ–ज्ञान बढ़ावे,
हठ तज मान करे विद्या का, शंकर श्रुति का सार निचोड़े ॥
हे ज० दे० म० स० स० ध० न छोड़े ॥ १ ॥

पवित्रता ७५

(दोहा)

तन, मन, वाणी, आत्मा, बुद्धि, चरित्र, पवित्र।
जो करलेता है वही, परम–मित्र का मित्र ॥ १ ॥

महा–मनोरथ ७६

(भजन)

हित–कारी तुझ सा नाथ,!
न अपना और कहीं कोई ॥ टेक ॥

शुद्ध किया पानी से तन को, सत्यामृत से मैले मन को,
बुद्धि-मलीन ज्ञान-गङ्गा में, बार बार धोई ।
हि० तु० ना० न० औ० क० कोई ॥
ज्वलित-ज्योति विद्या की जागी, रही न भूल अविद्या भागी,
कर्म कुठार मोह की माया, खोज खोज खोई ॥
हि० तु० ना० न० औ० क० कोई ॥
मार तपोबल के अङ्गारे, पातक-पुञ्ज पजारे सारे,
उमगा योग आत्मा अपना, भाव भूल भोई ।
हि० तु० ना० न० औ० क० कोई ॥
शंकर पाय सहारा तेरा, होगा सिद्ध मनोरथ मेरा,
दीन-दयालु इसी से मैंने, प्रेम-बेलि बोई ॥
हि० तु० ना० न० औ० क० कोई ॥१॥

प्रार्थना ७७

(दोहा)

तारक तेरा नाम है, जो शंकर भगवान ।
तो हम को भी तारदे, छोड़ न अपनी बान ॥१॥

कृपाभिलाषी ७८

(गीत)

ऐसी अमित कृपा कर प्यारे ॥टेक॥
मेघ महा-भ्रम के उड़जावें, तर्क-पवन के मारे ।
दिव्य-ज्ञान-दिनकर के आगे, खिलें न दुर्मत-तारे ॥
ऐसी अमित कृपा कर प्यारे ॥

वैदिक-सिद्ध सुधारें हम को, छूटें अवगुण सारे।
न्याय, नीति, बल से अपनावें, प्रभु सम्राट् हमारे॥
ऐसी अमित कृपा कर प्यारे॥
रहें न सब देशी परदेशी, सुख-समाज से न्यारे।
डूब मरें संकट—सागर में, पतित प्रेम—हत्यारे।
ऐसी अमित कृपा कर प्यारे॥
अबतो सुन पुकार पुत्रों की, हे पितु पालन हारे।
शंकर क्या हम से बहुतेरे, अधम नहीं उद्धारे॥
ऐसी अमित कृपा कर प्यारे॥४॥

कामादिदोष ७९

(दोहा)

शोणित पीते हैं सदा, अटके पांच पिशाच।
पांचों में मुखिया बना, प्रबल पञ्च—नाराच॥१॥

पांचपिशाच ८०

(गीत)

पांच पिशाच रुधिर पीते हैं॥टेक॥
काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह से, हा? किस के तन, मन रीते हैं।
पांच पिशाच रुधिर पीते हैं॥
पूरे रिपु चेतन—कुरङ्ग के, हरि, वृक, भालु, बाघ, चीते हैं॥
पांच पिशाच रुधिर पीते हैं॥
छुटें न इन से पिण्ड हमारे, अगणित जन्म वृथा बीते हैं।
पांच पिशाच रुधिर पीते हैं॥

शंकर वीर-बलिष्ठ वही है, जिस ने ये प्रति-भट जीते हैं ॥
पांच पिशाच रुधिर पीते हैं ॥ १ ॥

पापीकी पुकार ८१

(दोहा)

घेर रहे छोड़ें नहीं, अटके पाप—कठोर।
दीनानाथ निहारतू, मुझ व्याकुल कीओर ॥१॥

व्याकुल-विलाप ८२

(गीत)

हे प्रभु मेरी ओर निहार ॥ टेक ॥
एक अविद्या का अटका है, पंचरङ्गी परिवार।
मेल मिलाय *एषणा तीनों, करती हैं कुविचार।
हे प्रभु मेरी ओर निहार ॥
काट रहे कामादि कुचाली, धार कुकर्म—कुठार।
जीवन—वृक्ष खसाया, सूखा, पौरुष—पाल-पसार ॥
हे प्रभु मेरी ओर निहार ॥
घेर रहे बैरी—विषयों के, बन्धन रूप विकार।
लाद दिये सब ने पापों के, सिर पर भारी भार।
हे प्रभु मेरी ओर निहार ॥
जो तू करता है पतितों का, अपनाकर उद्धार।
तो शंकर मुझ पापी को भी, भव-सागर से तार ॥
हे प्रभु मेरी ओर निहार ॥ १ ॥

* एषणातीनों = पुत्रैषणा १, वित्तैषणा २, लोकैषणा ३

बेजोड़ पातकी ८३

(दोहा)

लोगो मन-मानी कहो, कुछ न करो संकोच।
और न मेरे जोड़ का, पतित-पातकी-पोच ॥१॥

अपनी अधमता ८४

(गीत)

मुझसा कौन अबोध अधम है ॥ टेक ॥
समता मिटी सत्त्व,रज,तम की, गौणिक-विकृति विषम है।
सुखद-विवेक-प्रकाश कहाँ है, नरक-रूप भ्रम-तम है ॥
मुझ सा कौन अबोध अधम है॥
मन में विषय-विकार भरे हैं, तन में अकड़ न कम है।
रहा न प्रेम-विलास बचन में, तनक न त्रिक-संयम है ॥
मुझ सा कौन अबोध अधम है॥
विकट-वितण्डा-वाद निगम है, कपट-जटिल-आगम है।
मंगल-मूल-मनोरथ अपना, अनुपकार-अनुपम है ॥
मुझ सा कौन अबोध अधम है।
अब कुछ धर्म-भाव उपजा है, यह अवसर उत्तम है।
पर करुणा-सागर-शंकर का, न्याय न निपट नरम है ॥
मुझ सा कौन अबोध अधम है ॥ १ ॥

उद्धार को निहोड़ा ८५

(दोहा)

डूबे संसृति-सिन्धु में, देह-पोत बहु बार।
शंकर! बेड़ा दीन का, अब तो करदे पार ॥ १ ॥

हताशकी हा! हा! ८६

(गीत)

डगमग डोले दीनानाथ,!
नैया भव-सागर में मेरी ॥ टेक ॥
मैं ने भर भर जीवन-भार, छोड़े तन-बोहित बहु बार,
पहुंचा एक नहीं उस पार, यह भी काल-चक्र ने घेरी।
ड० डो० दी० नै० भ० मेरी ॥
टूटका मेरु-दण्ड पतवार, कर,पग,पाते चलें न चार,
सकुचा मन माझी हिय हार, पूरी दुर्गति रात अंधेरी ॥
ड० डो० दी० नै० भ० मेरी ॥
फूलें अघ, झष,नक्र,भुजङ्ग, झटकें पटकें ताप-तरङ्ग,
घरती कर्म-पवन के सङ्ग, भागे भरती है चकफेरी।
ड० डो० दी० नै० भ० मेरी ॥
ठोकर मरणाचल की खाय, फट कर डूब जायगी हाय,
शंकर अबतो पार लगाय, तेरी मार सही बहुतेरी ॥
ड० डो० दी० नै० भ० मेरी ॥ १ ॥

उपसंहार ८७

(दोहा)

भक्ति-भूमिका पै बना, मन्दिर दृढ़-विश्वास।
राग-रत्न का होरहा, मङ्गलकर उल्लास ॥१॥

** इति **

(ओ३म्)

अनुराग-रत्न

* भद्रोद्भास *

(यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति)

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः ।
दिवीव चक्षुरा ततम् ॥ ऋ० १।२।७।२० ॥

(ब्रह्मनाद)

समाधिनिर्धूत मलस्य चेतसो, निवेशि तस्यात्मनि यत्सुखं भवेत्,
नशक्यतेवर्णयितुं गिरा तदा, स्वयं तदन्तः करणेन गृह्यते ॥

सत्यका महत्व १

(महालक्ष्मी-वृत्त)

सत्य संसार का सार है । सत्य का शुद्ध व्यापार है ।
सत्य सद्धर्म का धाम है । सत्य सर्वज्ञ का नाम है ॥ १ ॥

गुरु-गुण-गान २

(रुचिरा-छन्द)

जिस अखिलेश अकाय एक ने, खेल अनेक पसारे हैं ।
जिस असीम चेतन के वश में, जीव चराचर सारे हैं ॥
जिस गुण हीन ज्ञान-सागर ने, सब गुण धारी धारे हैं ।
उस के परम-भक्त बुध-योगी, श्रीगुरु देव हमारे हैं ॥ १ ॥

प्रतिभाकीप्रतिष्ठा ३

(दोहा)

जिस के ज्ञानागार में, प्रतिभा करे विलास।
बीज विश्व-विज्ञान का, समझो उस के पास ॥ १॥

सद्गुरु-गौरव ४

(गीत)

जिस में सत्य सबोध रहैगा,
कौन उसे सद्गुरु न कहैगा ॥ टेक ॥

जो विचार विचरेगा मन में, अर्थ बसेगा वही बचन में,
भेद न होगा कर्म, कथन में, तीन भांति रस एक बहैगा।
जि० स० स० र० कौ० उ० स० न कहैगा ॥

सद्गुण-गण-गौरव तोलेगा, पोल कपट, छल की खोलेगा,
जय प्रमाण-प्रण की बोलेगा, मार मार-भट की न सहैगा ॥
जि० स० स० र० कौ० उ० स० न कहैगा ॥

मोह-महासुर से न डरेगा, कुटिलों में ऋजु-भाव भरेगा,
उन्नति के उपदेश करेगा, गैल अधोगति की न गहैगा।
जि० स० स० र० कौ० उ० स० न कहैगा ॥

धर्म सुधार अधर्म तजेगा, योग-सिद्ध-शुभ-साज सजेगा,
शंकर को धर ध्यान भजेगा, दुःख-हुताशन में न दहैगा ॥
जि० स० स० र० कौ० उ० स० न कहैगा ॥ १ ॥

महापुरुषोंसेसुधार ५

(दोहा)

होने लगता है जहां, परम-धर्म का ह्रास।
योगी करते हैं वहां, दूर अधर्मज-त्रास ॥ १ ॥

जीवन्मुक्तों के नाम ६

(गीत)

सुनो रे साधो,
मङ्गल-मण्डित नाम ॥ टेक ॥

अग्नि, वायु, आदित्य, अङ्गिरा, प्रकटे पूरण काम ।
ब्रह्मा, मनु, वसिष्ठ ने पाया, उच्च विशद विश्राम ॥
सु० सा० मं० मं० नाम ॥

धर्माधार अखण्ड प्रतापी, राम लोक अभिराम ।
योगि राज अद्वैत विवेकी, यादवेन्द्र घनश्याम ॥
सु० सा० मं० मं० नाम ॥

विद्या वारिधि व्यास देव ने, समझे ऋग्यजु साम ।
सिद्ध प्रसिद्ध महा विज्ञानी, शुद्ध-बुद्ध सुख धाम ॥
सु० सा० मं० मं० नाम ॥

शंकरादि नामी पुरुषों के, गाय गाय गुण ग्राम ।
करिये दयानन्द स्वामी को, श्रद्धा सहित प्रणाम ॥
सु० सा० मं० मं० नाम ॥ १ ॥

मोक्ष पर सदुक्ति ७

(अभिनववृत्त)

कौन मानेगा नहीं, इस उक्ति को ।
गाढ़ निद्रा सी कहैं, यदि मुक्ति को ॥
खोखली है भावना, उस अन्ध को ।
मानता है जो नहीं, दृढ़ युक्ति को ॥ १ ॥

ज्ञानान्मुक्ति ८

(दोहा)

नाना कारण दुःख के, सुख के हेतु अनेक ।
साधन है कैवल्य का, केवल एक विवेक ॥ १ ॥

प्रशस्त पाठ ६

(सगणात्मक-सवैया)

बिन बास बसे बसुधा भर में, द्रवता रस हीन बहै बन में ।
चमके बिन रूप हुताशन में, विचरे बिन छूत प्रभञ्जन में ।
गरजे बिन शब्द ख मण्डल में, बिन भेद रहै जड़ चेतन में ।
कवि शंकर ब्रह्म बिलास करे, इस भांति विवेक भरे मन में ॥१॥

शुभ सत्य—सनातन धर्म वही, जिस में मत पन्थ अनेक नहीं ।
बल-वर्द्धक वेद वही जिस में, उपदेश अनर्थक एक नहीं ॥
अविकल्प समाधि वही जिस में, सुख संकट का व्यतिरेक नहीं ।
कवि शंकर बुद्ध विशुद्ध वही, जिस के मन में अविवेक नहीं ॥२॥

सित वैदिक मंत्र पयोद घने, सुविचार- महाचल पै बरसें ।
विधि और निषेध प्रवाह बहैं, उपदेश—तड़ाग भरे दरसें ॥
व्रत-साधन—द्रुम बढ़ें बिकसें, लटकें फल चार पकें सरसें ।
कवि शंकर मूढ़ विवेक बिना, इस रूपक के रस को तरसें ॥३॥

जड़ चेतन भूत अधीन रहैं, गुण साधन दान करें जिस को ।
सब को अपनाय सुधार करे, शुभचिन्तक रोक रहै रिस को ॥
बन जीवन-मुक्त सुखी विचरें, तज मौखिक दन्त घिसाघिस को ।
कवि शंकर ब्रह्म विवेक बिना, इतने अधिकार मिलें किस को ॥४॥

गिन खेट भकूट ख मण्डल में, फल ज्योतिष के पहँचान लिये ।
कर शिल्प रसायन की रचना, रच भौतिक-तत्व-विधान लिये ॥
समझे गुण दोष चराचर के, नव-द्रव्य यथाक्रम मान लिये ।
कवि शंकर ज्ञान विशारद ने, सब के सब लक्षण जान लिये ॥५॥

परिवार–बिलास बिसार दिये, क्षण भंगुर भोग भरे घर में ।
समता उपजी ममता न रही, अपवित्र अनित्य कलेवर में ॥
अभिमान मरा भ्रम दोष मिटे, अनुराग रहा न चराचर में ।
कवि शंकर पाय विवेक टिके, इस भांति महा मुनि शंकर में ॥६॥

भ्रम-कुम्भ असार असत्य भरे, गिर सत्य शिला पर फूट गये ।
हठवाद, प्रमाद, न पास रहे, दृढ़ मायिक बन्धन टूट गये ॥
समझे अज एक सदाशिव को, कुविचार, कुलक्षण छूट गये ।
कवि शंकर सिद्ध,प्रसिद्ध,सुधी, सुख-जीवन का रस लूट गये ॥७॥

सुरपादप निर्भय–न्याय बने, घनश्याम घटा बनजाय दया ।
रुचि-भू पर प्रीति-सुधा बरसे, बन ब्यार बहै करनी अभया ॥
उपकार मनोहर फूल खिलें, सब को दरसे नय दृश्य नया ।
कवि शंकर पुण्य फले उसका, जिस में गुरु-ज्ञान समाय गया ॥८॥

कब कौन अगाध-पयोनिधि के, उस पार गया जल-यान बिना ।
मिल प्राण,अपान, उदान,रहैं, तन में न समान,सव्यान बिना ॥
कहिये ध्रुव-ध्येय मिला किस को, अविकल्प अचञ्चल ध्यान बिना ।
कवि शंकर मुक्ति न हाथ लगी, भ्रम-नाशक निर्मल ज्ञान बिना ॥९॥

पढ़ पाठ प्रचण्ड प्रमाद भरे, कपटी जन जन्म गमाय गये ।
रण रोप भयानक आपस में, भट केवल पाप कमाय गये ॥
धन,धाम बिसार धरातल में, धनवान असंख्य समाय गये ।
कवि शंकर सिद्ध मनोरथ की, जड़ शुद्ध सुबोध जमाय गये ॥१०॥

उपदेश अनेक सुने मन को, रुचि के अनुसार सुधार चुके ।
धर ध्यान यथाविधि मंत्र जपे, पढ़ वेद पुराण विचार चुके ॥

गुरु-गौरव धार महन्त बने, धन धाम कुटुम्ब बिसार चुके।
कवि शंकर ज्ञान बिना न तरे, सब ओर फिरे झखमार चुके ॥११॥

निगमागम, तंत्र, पुराण पढ़े, प्रतिवाद-प्रगल्भ कहाय खरे।
रच दम्भ प्रपञ्च पसार घने, बन वञ्चक बेष अनेक धरे॥
विचरे कर पान प्रमाद-सुरा, अभिमान-हलाहल खाय मरे।
कवि शंकर मोह-महोदधि को, बकराज विवेक बिना न तरे ॥१२॥

गुरु-गौरव हीन कुचाल चलें, मत भेद पसार प्रपञ्च रचें।
दिन रात मनोमुख मूढ़ लड़ें, चहुँ ओर घने घमसान मचें॥
व्रत-बन्धन के मिस पाप करें, हठ छोड़ न हाय लबार लचें।
कवि शंकर मोह-महासुर से, बिरले जन पाय विवेक बचें ॥१३॥

घर बार बिसार विरक्त बने, मुनि बेष बनाय प्रमत्त रहैं।
बकवाद अबोध गृहस्थ सुनें, शठ शिष्य अनन्य-सुजान कहैं॥
घुस घोर घमण्ड महावन में, बिचरें कुलबोर कुपन्थ गहैं।
कवि शंकर एक विवेक बिना, कपटी उपताप अनेक सहैं ॥१४॥

तन सुन्दर रोग-विहीन रहै, मन त्याग उमङ्ग उदास न हो।
मुख धर्म-प्रसङ्ग प्रकाश करे, नर-मण्डल में उपहास न हो॥
धन की महिमा भरपूर मिले, प्रतिकूल मनोज-विलास नहो।
कवि शंकर ये उपभोग वृथा, पटुता, प्रतिभा यदि पास नहो ॥१५॥

दिन रात समोद विलास करें, रस रङ्ग भरे सुख-साज बने।
शिर धार किरीट कृपाण गहैं, अवनी भर के अधिराज बने॥
अनुकूल अखण्ड प्रताप रहै, अविरुद्ध अनेक समाज बने।
कवि शंकर वैभव ज्ञान बिना, भवसागर के न जहाज बने ॥१६॥

जिस पै करतूत चली न किसी, नर,किन्नर,नाग,सुरासुर की ।
बल,साहस के फल से न भिड़ी, हठ भीरु, भगोड़ भयातुर की ॥
गति उद्यम के मग में न रुकी, अति उच्च उमङ्ग भरे उरकी ।
कवि शंकर पै बिन ज्ञान उसे, प्रभुता न मिली प्रभुके पुरकी ॥१७॥

अनमेल अनीति-प्रचार करें, अपवित्र-प्रथा पर प्यार करें ।
खल-मण्डल का उपकार करें, बिगड़े न समाज सुधार करें ॥
अपकार अनेक प्रकार करें, व्यभिचार सुकर्म बिसार करें ।
कवि शंकर नीच-विचार करें, बिन बोध बुरे व्यवहार करें ॥१८॥

कुलबोर कठोर महा कपटी, कब कोमल-कर्म-कलाप करें ।
पशु पोच प्रचण्ड प्रमाद भरे, भर पेट भयानक पाप करें ॥
प्रण रोप लड़ें लघु आपस में, तज बैर न मेल मिलाप करें ।
कवि शंकर मूढ़ विवेक बिना, अपना गल बन्धन आप करें ॥१९॥

बिन पावक देव न पासकते, अभिमंत्रित आहुतियां हवि की ।
रसराज न सुन्दर साज सजे, छिटके मिल जो न छटा छवि की ॥
ग्रह ऋक्ष खिलें नखमण्डल में, यदि प्यार करे न प्रभा रवि की ।
कवि शंकर तो बिन ज्ञान किसे, पदवी मिलजाय महाकवि की ॥२०॥

ब्रह्मचर्य का महत्व १०

(दोहा)

रहै जन्म से मृत्युलों, ब्रह्मचर्य-व्रत धार ।
सबको ऐसे वीर को, पौरुष पुरुषाकार ॥ १ ॥
बालब्रह्मचारी जहां, उपजें परमोदार ।
शंकर होता है वहां, सबका सर्व-सुधार ॥ २ ॥

बाल ब्रह्मचारी रहे, पाय प्रताप-अखण्ड ।
पाठक ? आगे देखलो, पांच प्रमाण प्रचण्ड ॥ ३ ॥

प्रशस्त-पञ्चक ११

(त्रिविरामात्मक-मिलिन्दपाद)

(पुरुषोत्तम परशुराम)

चूका कहीं न, हाथ गले, काटता रहा ।
पैना कुठार, रक्त बसा, चाटता रहा ॥
भागे भगोड़, भीरु भिड़ा, धीर न कोई ।
मारे महीप, बृन्द बचा, वीर न कोई ॥
सुप्रसिद्ध राम,-जामदग्न्य, का*कुदान है ।
महिमा-अखण्ड, ब्रह्मचर्य, की महान है ॥ १ ॥

(महावीर-हनुमान)

सुग्रीव का सु,-मित्र बड़े, काम का रहा ।
प्यारा अनन्य,-भक्त सदा, राम का रहा ॥
लङ्का जलाय, काल खलों, को सुझा दिया ।
मारे प्रचण्ड, दुष्ट दिया, भी बुझा दिया ॥
हनुमान बली, वीर-बरों, में प्रधान है ।
महिमा-अखण्ड, ब्रह्मचर्य, की महान है ॥ २ ॥

(राजर्षि-भीष्मपितामह)

भूला न किसी, भांति कही, टेक टिकाना ।
माना मनोज, का न कहीं, ठीक ठिकाना ॥

* कुदाम = भूमिदान - खोटादाम - उछलकूद -

जीते असंख्य, शत्रु रहा, दर्प दिखाता।
शय्या शरों की, पाय मरा, धर्म सिखाता॥
अब एक भी न, भीष्म बली,सा सुजान है।
महिमा–अखण्ड, बृह्मचर्य, की महान है॥ ३॥

(महात्माशंकराचार्य)

संसार सार, हीन सदा, सा उड़ा दिया।
अल्पज्ञ जीव, मन्द दशा, से छुड़ा दिया॥
अद्वैत एक, बृह्म सबों, को बता दिया।
कैवल्य-रूप, सिद्धि-सुधा, का पता दिया॥
भ्रम-भेद भरा, शकरेश, का न ज्ञान है।
महिमा-अखण्ड, बृह्मचर्य, की महान है॥ ४॥

(स्वामीदयानन्दसरस्वती)

विज्ञान- पाठ, वेद पदों, को पढ़ा गया।
विद्या-विलास,विज्ञ बरों, का बढ़ा गया॥
सारे असार, पन्थ मतों, को हिला गया।
आनन्द-सुधा, सार दया, का पिला गया॥
अब कौन दया,नन्द यती, के समान है।
महिमा-अखण्ड, बृह्मचर्य, की महान है॥ ५॥

सद्गुरुदीक्षा १२

(दोहा)

विज्ञ वेद-वक्ता मिले, श्री गुरु देव दयालु।
ब्रह्मानन्दी बन गये, सेवक सब अज्ञालु॥ १॥

सद्गुरु-प्रसाद १३

(गीत)

श्री गुरु दयानन्द से दान,
हमने ब्रह्मानन्द लिया है ॥ टेक ॥
लेकर वेदों का उपदेश, देखा परम-धर्म का देश,
जाना मंगल-मूल महेश, ज्ञानागार पवित्र किया है।
श्री० द० दा० ह० ब्र० लिया है ॥
पाये युक्ति-प्रमाण प्रचण्ड, जिन से जीत लिया पाखण्ड,
मारा देकर दण्ड घमण्ड, हठ का झगड़ा फोड़ दिया है ॥
श्री० द० दा० ह० ब्र० लिया है ॥
भ्रम की तारतम्यता तोड़, उलझे जाल मतों के छोड़,
उलटे पन्थों से मुख मोड़, प्रतिभा का पीयूष पिया है।
श्री० द० दा० ह० ब्र० लिया है ॥
मुनि की शिक्षा का बल धार, पूजा प्रेम विरोध विसार,
शंकर कर दे बेड़ा पार, जीवन दाता योग जिया है ॥
श्री० द० दा० ह० ब्र० लिया है ॥१॥

सद्गुरु-घोषणा १४

(षट्पदी-छन्द)

ब्रह्म विचार प्रचार, ध्यान शंकर का धरना।
जाल, प्रपञ्च, पसार, न पूजा जड़ की करना ॥
भूत, प्रेत, अवतार, और तज श्राद्ध मरों के।
धर्म सुयश, विस्तार, गहो गुण विज्ञ-वरों के ॥
भ्रम, भूलों की संशोधना, शुभ सामयिक सुधार है।
यह विदों की उद्घोषणा, सुन-गुरु! गौरव सार है ॥१॥

अनभिज्ञ अनधिकारी १५

(दोहा)

सीखे श्रीगुरु देव से, ज्ञान-कथा अति गूढ़ ।
तोभी महिमा ब्रह्म की, हाय! न समझे मूढ़ ॥१॥

सद्गुरु का सच्छिष्य १६

(गीत)

श्रीगुरु गूढ़ ज्ञान के दानी ॥ टेक ॥
देख सर्व--संघात ब्रह्म की, अटल एकता जानी ।
भेदों से भरपूर अविद्या, भूल भरी पहँचानी ॥
श्रीगुरु गूढ़-ज्ञान के दानी ॥
एक वस्तु में तीन गुणों की, मायिक-महिमा मानी ।
ठोस, पोल की तारतम्यता, मूल--प्रकृति ने ठानी ॥
श्रीगुरु गूढ़-ज्ञान के दानी ॥
देश, दिशा, आकाश, काल, भू, मारुत, पावक, पानी ।
इन के साथ जीव की जागी, ज्योति मनोरस सानी ॥
श्रीगुरु गूढ़-ज्ञान के दानी ॥
छोटासा उपदेश दिया है, बढ़िया बात बखानी ।
तोभी मूढ़ नहीं समझेंगे, शङ्कर कूट—कहानी ॥
श्रीगुरु गूढ़-ज्ञान के दानी ॥ १ ॥

सद्गुरु के दीक्षित-शिष्य १७

(दोहा)

विज्ञानी गुरु देव ने, दूर किया भ्रम-रोग ।
आज अविद्या-बन्ध से, मुक्त हुये हम लोग ॥

वैदिक वीरों की प्रतिज्ञा १८

(रूपघनाक्षरी-कवित्त)

पद्धति न छोड़ेंगे प्रतापी धर्म धारियों की,
पापी बक्र-गामियों की गैल न गहैंगे हम।
सेवक बनेंगे ब्रह्मचारी, साधु, पण्डितों, के,
मानी मूढ़-मण्डल के साथी न रहैंगे हम॥
पावे शुद्ध-सम्पदा तो भोगें सुख-भोग सदा,
आपदा पड़े तो सारे संकट सहैंगे हम।
जीवन सुधारें एक तेरी भक्ति-भावना से,
दीनानाथ-शंकर-सँगाती से कहैंगे हम॥ १॥

देश का पुनरुद्धार १९

(दोहा)

देगी शंकर की दया, अब आनन्द अपार।
देखो! भारत का हुआ, उदय दूसरी बार॥ १॥

भारतोदय २०

(गीतिकात्मक-मिलिन्दपाद)

ब्रह्मचारी ब्रह्म-विद्या, का विशद विश्राम था।
धर्म धारी धीर योगी, सर्व--सद्गुण धाम था॥
कर्म-वीरों में प्रतापी, पर निरा निष्काम था।
श्री दयानन्दर्षि स्वामी, सिद्ध जिस का नाम था॥
बीज विद्या के उसी का, पुण्य-पौरुष बोगया।
देखलो लोगो दुबारा, भारतोदय होगया॥ १॥

सत्यवादी वीर था जो, वाचनिक-संग्राम का ।
साहसी पाया किसी को, भी न जिस के काम का ॥
प्राणदे प्रेमी बना जो, प्रेम के परिणाम का ।
क्या दया आनन्द धारी, धीर था वह नाम का? ॥
धन्य सच्छित्ता-सुधा से, धर्म का मुख धोगया ।
देख लो लोगो दुबारा, भारतोदय होगया ॥ २ ॥

साधु-भक्तों में सुयोगी, संयमी बढ़ने लगे ।
सभ्यता की सीढ़ियों पै, सूरमा चढ़ने लगे ॥
वेद-मंत्रों को विवेकी, प्रेम से पढ़ने लगे ।
वञ्चकों की छातियों में, शूल से गढ़ने लगे ॥
भारती जागी अविद्या, का कुलाहल सोगया ।
देखलो लोगो दुबारा, भारतोदय होगया ॥ ३ ॥

कामना विज्ञान वादी, मुक्ति की करने लगे ।
ध्यान द्वारा धारणा में, ध्येय को धरने लगे ॥
आलसी, पापी, प्रमादी, पाप से डरने लगे ।
अन्ध-विश्वासी सचाई, भूल में भरने लगे ॥
धूलि मिथ्याकी उड़ादी, दम्भ-दाहक रोगया ।
देखलो लोगो दुबारा, भारतोदय होगया ॥ ४ ॥

तर्क-झंझा के झकोले, झाड़ते चलने लगे ।
युक्तियों की आग चेती, जालिया जलने लगे ॥
पुण्य के पोधे फबीले, फूलने फलने लगे ।
हाथ हत्यारे हठीले, मादकी मलने लगे ॥
खेल देखे चेतना के, जड़ खिलोना खोगया ।
देखलो लोगो दुबारा, भारतोदय होगया ॥ ५ ॥

तामसी थोथे मतों की, मोह-माया हट गई ।
ऐंठ की पोली पहाड़ी, खण्डनों से फट गई ॥
छूत छैया की अछूती, नाक लम्बी कट गई ।
लालची, पाखण्डियों की, पेट-पूजा घट गई ॥
ऊत भूतों का बखेड़ा, डूब मरने को गया ।
देखलो लोगो दुबारा, भारतोदय होगया ॥ ६ ॥

राज–सत्ता की महत्ता, धन्य मङ्गल–मूल है ।
दण्ड भी कांटा नहीं है, न्याय–तरु का फूल है ॥
भावना प्यारी प्रजा की, धर्म के अनुकूल है ।
जो बना बैरी, बिरोधी, हाय उस की भूल है ॥
क्या जिया जो दुष्टता का, भार आकर ढोगया ।
देखलो लोगो दुबारा, भारतोदय होगया ॥ ७ ॥

सत्य के साथी विवेकी, मृत्यु को तरजायँगे ।
ज्ञान–गीता गाय भोलों, का भला करजायँगे ॥
अन्ध-अज्ञानी अँधेरे, में पड़े मरजायँगे ।
आप डूबेंगे अविद्या, देश में भरजायँगे ॥
शंकरानन्दी वही है, जान शिव को जो गया ।
देखलो लोगो दुबारा, भारतोदय होगया ॥ ८ ॥

सदुपाय २१

(दोहा)

भूल न दीनानाथ को, कर्म, विचार सुधार ।
यों हो सकता है सखा !, भव-सागर से पार ॥ १ ॥

उद्बोधनाष्टक २२

(सरसी-छन्द)

काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह की, पँचरंगी कर दूर ।
एक रंग तन, मन, बाणी में, भर ले तू भरपूर ॥
प्रेम पसार न भूल भलाई, बैर, विरोध बिसार ।
भक्ति-भाव से भज शंकर को, धर्म दया उर धार ॥ १ ॥

देख ! कुदृष्टि न पड़ने पावे, पर-बनिता की ओर ।
विवश किसी को नहीं सुनाना, कोई वचन कठोर ॥
अबला, अबलों को न सताना, पाय बड़ा अधिकार ।
भक्ति-भाव से भज शंकर को, धर्म दया उर धार ॥ २ ॥

आय न उलझैं मत वालों के, छल, पाखण्ड, प्रमाद ।
नेक न जीवन-काल बिताना, कर कोरे बकवाद ॥
बांटें मुक्ति ज्ञान बिन उन को, जान अजान लबार ।
भक्ति भाव से भज शंकर को, धर्म दया उर धार ॥ ३ ॥

हिंसक, मद्यप, आमिष–भोजी, कपटी, वञ्चक, चोर ।
ज्वारी, पिशुन, चबोर, कृतघ्नी, जार, हठी, कुलबोर ॥
असुर, आततायी, नृप-द्रोही, इन सब को धिक्कार ।
भक्ति-भाव से भज शंकर को, धर्म दया उर धार ॥ ४ ॥

जो सब छोड़ सदा फिरते हैं, निर्भय देश, विदेश ।
तर्क-सिद्ध श्रेयस्कर जिन से, मिलते हैं उपदेश ॥
ऐसे अतिथि महापुरुषों का, कर सादर सत्कार ।
भक्ति-भाव से भज शंकर को, धर्म दया उर धार ॥ ५ ॥

माता, पिता, सुकवि, गुरु, राजा, कर सब का सम्मान।
रुग्ण, अनाथ, पतित, दीनों को, दे जल, भोजन, दान॥
सुभट, गदारि, शिल्पकारों को, पूज सुयश विस्तार।
भक्ति-भाव से भज शंकर को, धर्म दया उर धार॥ ६॥

लगन लगाय धर्म-पत्नी से, कुल की बेलि बढ़ायं।
कर सुधार दुहिता, पुत्रों का, बैदिक-पाठ पढ़ाय॥
सज्जन, साधु, सुहृद, मित्रों में, बैठ विचार प्रचार।
भक्ति-भाव से भज शंकरको, धर्म दया उर धार॥ ७॥

पाल कुटुम्ब सदुद्यम-द्वारा, भोग सदा सुख-भोग।
करना सिद्ध ज्ञान-गौरव से, निश्रेयस-प्रद—योग॥
जप, तप, यज्ञ, दान, देवेंगे, जीवन के फल चार।
भक्ति-भाव से भज शंकर को, धर्म दया उर धार॥ ८॥

धर्म से सुधार २३

(दोहा)

जानेगा जगदीश को, जो जन छोड़ कुकर्म।
क्यों न सुधारेगा उसे, सत्य-सनातन-धर्म॥ १॥

प्रबोध पञ्चक २४

(प्रमाणिकात्मकमिलिन्दपाद)

सुधार धर्म कर्म को। विसार दो अधर्म को॥
बढ़ाय बेलि प्रीति की। कथा सुनीति रीति की॥
सुना करो अनेक से।
मिलो महेश एक से॥ १॥

बनाय ब्रह्मचर्य को । मनाय विज्ञ वर्य को ॥
षड़ङ्ग वेद को पढ़ो । सुबोध-शैल पै चढ़ो ॥
सुधी बनो विवेक से ।
मिलो महेश एक से ॥२॥

रिझाय धर्म-राज को । भजो भले समाज को ॥
मिटाय जाति पाँति के । बिरोध भाँति भाँति के ॥
छुड़ाय छेक छेक से ।
मिलो महेश एक से ॥३॥

जगाय ब्रह्म-योग को । भगाय कर्म–भोग को ॥
बसाय ज्ञेय ज्ञान में । धसाय ध्येय ध्यान में ॥
* समाधि सीख भेक से ।
मिलो महेश एक से ॥४॥

जनाय जाल–जल्पना । करो न कूट-कल्पना ॥
विचार शंकरादि के । रहस्य हैं ऋगादि के ॥
उन्हें टिकाय टेक से ।
मिलो महेश एक से ॥५॥

आत्मज्ञकीतल्लीनता २५

(दोहा)

जाना जिसने आप को, भ्रम के भेद विसार ।
मित्र उसी तल्लीन का, है शंकर करतार ॥ १ ॥

* नोट—समाधि सीख भेक से = भेक = मेंडक से समाधि की शिक्षा की गई है.

सावधान रहो २६

(भुजंग्यात्मकराजगीत)

महादेव को भूल जाना नहीं। किसी और से लौ लगाना नहीं॥
बनो ब्रह्मचारी पढ़ो वेद को। द्विजाभास कोरे कहाना नहीं॥
करो प्यार पूरा सदाचार पै। दुराचार से जी जलाना नहीं॥
निरालस्य विद्या बढ़ाते रहो। अविद्या-नटी को नचाना नहीं॥
रहो खोलते पोल पाखण्ड की। खलों की प्रतिष्ठा बढ़ाना नहीं॥
बड़ाई करो ज्ञान, विज्ञान की। महामोह की मार खाना नहीं॥
अहिंसा न छोड़ो दया दान दो। किसी जीव को भी सताना नहीं॥
सुना के रसीली कथा जाल की। मरी मण्डली को रिझाना नहीं॥
बिना याचना और की वस्तु को। ठगी से न लेना चुराना नहीं॥
छुआ छूत से जाति के मेल को। घृणा के गढ़े में गिराना नहीं॥
न छूना छड़ी राज विद्रोह की। प्रजा की प्रशंसा घटाना नहीं॥
महाशोक सन्ताप के सिन्धु में। गिरा नारियों को डुबाना नहीं॥
चलाना सदुद्योग से जीविका। दिखा लोभ-लीला कमाना नहीं॥
न चूको मिलो शंकरानन्द से। निरे तर्क के गीत गाना नहीं॥१॥

शुभ सूचना २७

(दोहा)

मत पन्थों में जाल के, देख चुका सब देश।
भोले अबतो मानले, शंकर का उपदेश॥१॥

सदुपदेश २८

(रुचिरात्मक-राजगीत)

शुद्ध सच्चिदानन्द ब्रह्म का, भक्ति भाव से ध्यान करो।
कर्म-योग साधन के द्वारा, सिद्ध ज्ञान विज्ञान करो॥

वेद–विरोधी–पन्थ विसारो, मन्द–मतों से दूर रहो ।
करते रहो सत्य की सेवा, गुरु लोगों का मान करो ॥
शुभ–सुदृश्य देखो विद्या के, धूलि अविद्या पर डालो ।
अपने गुण, आविष्कारों का, सब देशों को दान करो ॥
चारों ओर सुयश विस्तारो, पुण्य–प्रतिष्ठा को पकड़ो ।
राज–भक्ति के साथ प्रजा की, पूजा का अभिमान करो ॥
छोड़ो उन कामों को जिन से, औरों का उपकार नहो ।
वैर त्याग, पीयूष प्रेम का, सभ्य–सभा में पान करो ॥
प्राण हरो आलस्यासुर के, रक्षा करो सदुद्यम की ।
सेवक बनो धर्म–वीरों के, दुष्टों का अपमान करो ॥
हेमित्रो ! दुर्लभ–जीवन पै, कोई दोष न लगने दो ।
अपनालो शंकर–स्वामी को, बैठे मंगल–गान करो ॥१॥

विद्या-विलासी बनो २९

(दोहा)

जीव अविद्या-व्याधि को, कर देगा जब दूर ।
शंकर--दाता की दया, तब होगी भरपूर ॥ १ ॥

हितवार्ता ३०

(गीत)

अब चेतो भाई,
चेतना न त्यागो जागो सो चुके ॥ टेक ॥
समता सत्की पटुता पटकी, अटकी कटुता छल-बल की,
भूल भरी जड़ता अपनाली, विद्या के सहारे न्यारे हो चुके ।
अ० चे० भा० चे० त्या० जा०सो चुके ॥

अपनी गुरुता लघुता करली, परखी प्रभुता पर घर की,
कायर–कर्म–कलाप तुम्हारे, वीरों की हँसी के मारे रो चुके ॥
अ० चे० भा० चे० त्या० जा० सो चुके ॥

बिगड़ी सुबिधा सुख-साधन की, उलटी गति अस्थिर धन की,
सौंप दरिद्र सदुद्यम डूबे, खेलों में कमाना खाना खो चुके।
अ० चे० भा० चे० त्या० जा० सो चुके ॥

उतरी पगड़ी बढ़िया-पन की, घुड़कें अगुआ अवनति के,
सेवक–शंकर के न कहाये, पन्थों में मतों के काँटे बोचुके ॥
अ० चे० भा० चे० त्या० जा० सोचुके ॥ १ ॥

अबतो चेतजा ३१

(दोहा)

शैशव खोया खेल में, यौवन-काल समेत।
थोड़ा जीवन शेष है, अबतो चेत अचेत ॥ १ ॥

करभला होगा भला ३२

(गीत)

अब तो चेत भला कर भाई ॥ टेक ॥
बालक-पन में रहा खिलाड़ी, निकल गई तरुणाई।
बहुत बुढ़ापे के दिन बीते, उपजी पर न भलाई ॥
अबतो चेत भला कर भाई ॥

धर्म, प्रेम, विद्या, बल, धन की, करी न प्रचुर कमाई।
इन के बिना बटोर न पाई, सुयश बगार बड़ाई ॥
अबतो चेत भला कर भाई ॥

पिछले कर्म बिगाड़ चुका है, अगली विधि न बनाई ।
चलने की सुधि भूल रहा है, सुमति समीप न आई ॥
अबतो चेत भला कर भाई ॥
संकट काट नहीं सकती है, कपट भरी चतुराई ।
ब्रह्म-ज्ञान बिन हाय किसी ने, शंकर सुगति न पाई ॥
अबतो चेत भला कर भाई ॥ १ ॥

आपस का अनैक्य ३३

(दोहा)

जन्मे एक प्रकार से, भोग-बिलास समान ।
मरना भी है एकसा, समझें भेद अजान ॥ १ ॥
एक पिता के पुत्र हैं, धर्म--सनातन एक ।
हा ? मत वालों ने रचे, जाल-कुपन्थ अनेक ॥ २ ॥

नरक-निदर्शन ३४

[गीत]

हम सब एक पिता के पूत ॥ टेक ॥
हा ? विशाल-मानव-मण्डल में, उपजे उद्धत--ऊत ।
मान लिये इन मतवालों ने, भिन्न भिन्न मत-भूत ॥
हम सब एक पिता के पूत ॥
सामाजिक-बल को लग बैठी, छल की छूत अछूत ।
जल कर जाति-पाँति ने तोड़ा, सुख-साधन का सूत ॥
हम सब एक पिता के पूत ॥
प्रभुता पाय दहाड़ रहे हैं, सबल--रुद्र के दूत ।
पिण्ड पड़ी कुटिला-कुनीति की, रोष भरी करतूत ॥
हम सब एक पिता के पूत ॥

भड़क रही तीनों नरकों में, अड़ की आग-अकूत ।
शंकर कौन बुझावे इस को, बिन विवेक--जीमूत ॥
हम सब एक पिता के पूत ॥ १ ॥

प्रेम-पञ्चक ३५

(दोहा)

यद्यपि दोनों में रहै, जड़ता-मूलक मोह ।
तोभी प्रभुता प्रेम की, प्रकटैं चुम्बक लोह ॥ १ ॥
यों निर्जीव सजीव का, समझो प्रेम--प्रसङ्ग ।
प्यारे दीपक से मिले, प्राण-बिसार पतङ्ग ॥ २ ॥
तरु, बल्ली, फूलें, फलें, आपस में लिपटाय ।
माने महिमा मेल की, बढ़ें प्रेम-बल पाय ॥ ३ ॥
घेर रहे संसार को, प्रेम, बैर, भर पूर ।
पहले की पूजा करो, पिछले को कर दूर ॥ ४ ॥
बैठ प्रेम की गोद में, हिलमिल खेलो खेल ॥
प्रेम बिना होगा नहीं, प्रभु--शंकर से मेल ॥ ५ ॥

सच्ची-बात ३६

(सुमनात्मक-राजगीत)

मेल को मेला लगा है, मार खाने को नहीं ।
धर्म-रक्षा को टिके हो, जी दुखाने को नहीं ॥
जन्म होता है भलों का, देश के उद्धार को ।
प्रेम की पूजा, भलाई, भूल जाने को नहीं ॥
द्रव्य दाता ने दिया है, दान, भोगों के लिये ।
गाढ़ने को दीन--हीनों, के सताने को नहीं ॥

वीरता धारो प्रमादी, मोह के संहार को ।
जाति-विद्रोही खलों में, मान पाने को नहीं ॥
लौ लगी है ब्रह्म से तो, छोड़ दो संसार को ।
ढोंग अज्ञों के अखाड़ों, में दिखाने को नहीं ॥
शंकरानन्दी बनो तो, वेद-विद्या को पढ़ो ।
पण्डिताई के कटीले, गीत गाने को नहीं ॥ १ ॥

चरित सुधारो ३७

(दोहा)

जो कुछ भूलों से हुआ, उस का सोच बिसार ।
नाता तोड़ बिगाड़ से, चेत ? चरित्र सुधार ॥१॥

आत्म–शोधन ३८

(गीत)

बिगड़ा-जीवन, जन्म सुधार ॥ टेक ॥
खेल न खेल मूढ़-मण्डल में, कर विवेक पर प्यार ।
छल-बल छोड़ मोह-माया के, हित कर-सत्य पसार ॥
बिगड़ा-जीवन, जन्म सुधार ॥
बन्धन काट कड़े विषयों के, वश कर मन को मार ।
अस्थिर-भोग भोग मत भूले, सब को समझ असार ॥
बिगड़ा-जीवन, जन्म सुधार ॥
छाक न छल से छीन पराई, बाँट सुकृत--उपहार ।
मत सोचे अपकार किसी का, करले पर--उपकार ॥
बिगड़ा जीवन जन्म सुधार ॥

पल भर भी भूले मत भाई, हरि को भज हर बार।
चेत? चार फल देगा तुझ को, शंकर—परम—उदार ॥
बिगड़ा जीवन जन्म सुधार ॥ १ ॥

सुधारकीसूचना ३९

(दोहा)

मिलना है जो मित्र से, तो कुचरित्र सुधार।
प्रेमामृत पीले सखा, जाति-बिरोध बिसार ॥१॥

निषिद्ध—जीवन ४०

(षट्पदी—छन्द)

बालक, दीन, अनाथ, हाय? अपनाय न पाले।
दलित-देश के साथ, प्रेम कर कष्ट न टाले ॥
संकट किया न दूर, अभागे? बिधबा-दल से।
मान-दान भर पूर, न पाया मुनि-मण्डल से ॥
गरिमा न गही गोपाल की, ज्ञान न गुणियों से लिया।
शठ-शंकर? लोभी लालची, पाय प्रचुर पूँजी जिया ॥१॥

खोटी चाल छोड़दे ४१

(दोहा)

खोटा-जन्म सुधार ले, जीवन यों न बिगाड़।
क्यों रखता है पीठ पै, कपटी? पाप—पहाड़ ॥१॥

अबतो भला बनजा ४२

(गीत)

अब तो जीवन, जन्म सुधार,
क्यों विष उगले भूल भलाई ॥टेक॥

उत्तम-करनी से मुख मोड़, किलके कुल की पद्धति छोड़,
बिचरे मृदुता का घर फोड़, मन को उलटी चाल चलाई।
अ० जी० ज० सु० क्यों० उ० भू० भलाइ ॥
पर-हित के उद्यान उजाड़, कुचले विधि, निषेध के हाड़,
उमगा धर्म-प्रबन्ध—बिगाड़, छलिया छल की दाल गलाई।
अ० जी० ज० सु० क्यों० उ० भू० भलाई ॥
अकड़े हेकड़ उन्नत—काय, उछले बल का दर्प दिखाय,
सब को लूट लूट कर खाय, ठगिया ? निगले दूध मलाई।
अ० जी० ज० सु० क्यों० उ० भू० भलाई ॥
पटके लोक-लाज पर डेल, खेला खल-दल में मिल खेल,
रे शठ ? शंकर से कर मेल, योगानल में हठ न जलाई।
अ० जी० ज० सु० क्यों० उ० भू० भलाई ॥१॥

जाति—कण्टक ४३

(दोहा)

खोटे कर्म—कलाप से, प्रकटे मन का मैल।
मत्त—प्रमादी बैल ने, पकड़ी उलटी गैल ॥१॥

कुमार्ग-गामी ४४

(मालती--सवैया)

जाल प्रपञ्च पसार घने, कुल,—गौरव का उर फाड़ रहा है।
मानव—मण्डल में मिल दाहक, दानव-दुष्ट—दहाड़ रहा है ॥
जाति-समुन्नति की जड़ को कर, घोर कुकर्म उखाड़ रहा है।
भूल गया प्रभु—शंकर को जड़, जीवन, जन्म, बिगाड़ रहा है ॥१॥

पतित-प्रमादी ४५

(दोहा)

हाय? अभागे खो चुका, विद्या, बल, धन, धाम।
दाता से भिक्षुक बना, उलट राम का नाम॥

सुधार की शिक्षा ४६

(किरीट-सवैया)

सभ्य-समागम के प्रतिकूल न, मूढ़? भयानक-चाल चलाकर।
वञ्चक? बान बिसार बुरी रच, दम्भ किसी कुल को न छला कर॥
देख विभूति महज्जन की पड़, शोक-हुताशन में न जलाकर।
शंकर को भजरे? भ्रमको तज, रे भव का भरपूर भलाकर॥१॥

कपट-मुनि ४७

(दोहा)

औरों के अगुआ बने, गैल सुगति की भूल।
नाश करेंगे देशका, ऐसे असुर समूल॥ १ ॥

भूल की भड़क ४८

(कुण्डलिया-छन्द)

भूले भूल न त्यागते, पकड़ी छल की चाल।
भोलों के अगुआ बने, जड़-वञ्चक-बाचाल॥
जड़--वञ्चक--बाचाल, बैर की बेलि बढ़ाते।
पशु पाखण्ड पसार, पाप के पाठ पढ़ाते॥
उल रहे मद-मत्त, मोह कानन में फूले।
सत्य-धर्म, शुभकर्म, छोड़ शङ्कर को भूले॥ १ ॥

अचेत को चेतावनी ४९

(दोहा)

उलझा माया-जाल में, मूढ़ कुटुम्ब समेत ।
आता है दिन अन्त का, अब तो चेत अचेत ॥ १ ॥

उलाहना ५०

(गीत)

चूका चाल अचेत अनारी,
नारायण को भूल रहा है ॥ टेक ॥

जीवन,जन्म वृथा खोता है, बीज-अमङ्गल के बोता है,
खेल पसार मोह-माया के, अज्ञों के अनुकूल रहा है ।
चू० चा० अ० अ० ना० भूल रहा है ॥

यह मेरा है, वह तेरा है, ममता, परता ने घेरा है,
झंझट, झगड़ों के झूले पै, झकझोटों से झूल रहा है ॥
चू० चा० अ० अ० ना० भूल रहा है ॥

भोग-विलास रसीले पाये, दारा, पुत्र मिले मन भाये,
मानो मृग-तृष्णा के जल में, व्योम-पुष्प साफूल रहा है ।
चू० चा० अ० अ० ना० भूल रहा है ॥

शंकर ? अन्त-काल आवेगा, कुछ भी साथ न लेजावेगा,
झूंठी उन्नति के अभिमानी, क्यों कुसंग में ऊल रहा है ॥
चू० चा० अ० अ० ना० भूल रहा है ॥१॥

धर्मध्वज ५१

(दोहा)

प्रभुता का प्रेमी बना, प्रभु से किया न मेल ।
रे धर्मध्वज पाप के, खुल खुल खेला खेल ॥१॥

उपालम्भ ५२

(गीत)

दुर्लभ नर तन पाय के,
कुछ कर न सका रे ॥ टेक ॥
घोर-कुकर्म महा--पापों से, पल भर भी पछताय के,
ठग डर न सका रे ।
दु० न० पा० कु० कर न सका रे ॥
हा ? प्यारे मानव-मण्डल में, सुकृत-सुधा बरसाय के,
यश भर न सका रे ॥
दु० न० पा० कु० कर न सका रे ॥
वैदिक-देवों के चरणों पै, सेवक-सरल कहाय के,
सिर धर न सका रे ।
दु० न० पा० कु० कर न सका रे ॥
दीन-बन्धु-शंकर-स्वामी से, मन की लगन लगाय के,
भव तर न सका रे ॥
दु० न० पा० कु० कर न सका रे ॥१॥

धिक् पापिष्ट? ५३

(दोहा)

शंकर से न्यारा रहा, धर्म, सुकर्म बिसार ।
कौन उतारेगा तुझे, भव-सागर से पार ॥१॥

मनोमुख-धूर्त ५४

(उग्रदंडक)

सारे धर्म-कर्म छोड़े, गोड़े उद्यम के तोड़े,
मारें ज्ञान के गपोड़े, गीत गौरव के गाते हैं ।